LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 2: सांख्ययोग

3/6 (श्लोक 25-37), रविवार, 05 जून 2022

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/IYGQam0c3-U

आत्मा का अविनाशी स्वरूप

प्रभु की प्रार्थना, दीप प्रज्जवलन , गुरु वंदन, भारत माता, वेदव्यास जी, माँ भगवती और सद्गुरु स्वामी गोविंददेव गिरि जी महाराज के चरणो में वंदना के बाद गीता जी के दूसरे अध्याय सांख्ययोग का तृतीय विवेचन सत्र आरंभ हुआ।
परमात्मा की असीम कृपा से हम श्रीमद्भगवद्गीता जी का अध्ययन कर रहे हैं। जब अर्जुन के जीवन में अवसाद का समय आया तब साक्षात् भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को अवसाद की स्थिति से बाहर निकाला। श्रीमद्भगवद्गीता जी भगवान श्रीकृष्ण का वाङ्मयी रूप है जो हमारे जीवन को दिशा दिखाती है और सिखाती है कि आनंदमय जीवन कैसे जीना है। भगवद् कृपा होने से ही हम गीता जी का अध्ययन करते हैं।
सांख्य तत्वज्ञान में मुख्य बात जड़ और चेतन है। देह नाशवान है परन्तु देही अविनाशी है, देही सर्वत्र है, सब कालों में रहती है।

वेदाविनाशीनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।

कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्॥

भगवान मृत्यु के बारे में अर्जुन से कहते हैं कि जीर्ण हो जाने पर शरीर नष्ट हो जाता है पर आत्मा कभी नष्ट नहीं होती।

वासांसि जीर्णानि सदा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

आत्मा मर नहीं सकती, इसे न ही कोई मार सकता है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

आत्मा नित्य है, सर्वत्र है, सब कालों में रहती है, कहीं जाती नहीं है, स्थिर है, अचल है, सनातन है, अनंत है, सब में है। इसके बारे में चिंतन कर पाना कठिन है।

2.25

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयम्, अविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं(म्) विदित्वैनं(न्), नानुशोचितुमर्हसि॥2.25॥

यह देही प्रत्यक्ष नहीं दीखता, यह चिन्तन का विषय नहीं है (और) यह निर्विकार कहा जाता है। अतः इस देही को ऐसा जानकर शोक नहीं करना चाहिये।

विवेचन - भगवान कहते हैं कि जिसे हम हमारी इंद्रियों से ग्रहण कर सकते हैं - वह व्यक्त है। आँखों से देख सकते हैं, कानों से सुन सकते हैं। वायु दिखती नहीं परंतु उसके स्पर्श से हम जान सकते हैं। फूलों की सुगंध दिखती नहीं पर उसका अनुभव कर सकते हैं।
आत्मा अव्यक्त है, इंद्रियाँ इसको ग्रहण नहीं कर सकती। हम इसे किसी भी इंद्रिय से ग्रहण नहीं कर सकते हैं - यह अचिंत्य है। जो दिखता नहीं उसके बारे में चिंतन नहीं कर सकते हैं। यह अविकारी है - इसमें कोई भी विकार नहीं होता। शरीर के विकार होते हैं - यह निर्मित होता है, यह नाशवान है - जिसका निर्माण हुआ है वह नष्ट भी होता है। यह बढ़ता है ,क्षीण हो जाता है, नष्ट हो जाता है। आत्मा अव्यक्त है ,अविकारी है, ,जैसी थी वैसी रहती है।
हम विश्व में जो कुछ भी देखते हैं वह स्थिर नहीं है, यहाँ परिवर्तन ही नित्य है, सतत है। आत्मा में कोई परिवर्तन नहीं होता। यह जानकर, समझकर कि आत्मा अचिंत्य है, अव्यक्त है, अपरिवर्तनशील है । जीवन में दुःख हो सकता है पर दुःख होने पर विषाद में डूब कर कर्तव्य भूल जाना उचित नहीं है।

2.26

अथ चैनं(न्) नित्यजातं(न्), नित्यं(म्) वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं(म्) महाबाहो, नैवं(म्) शोचितुमर्हसि॥2.26॥

हे महाबाहो ! अगर (तुम) इस देही को नित्य पैदा होनेवाला अथवा नित्य मरने वाला भी मानो, तो भी तुम्हें इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिये।

विवेचन - भगवान अर्जुन को व्यवहारिक ज्ञान देते हैं कि यदि वह ऐसा मानते हैं कि जन्म होता है और मृत्यु भी होती है, आत्मा का जन्म होता है और मृत्यु भी होती है। जिसका निर्माण होता है वह नष्ट होता है, जिसका निर्माण नहीं होता उसका नाश भी नहीं होता। जिसका निर्माण हुआ था उसका विनाश हो चुका है जिसका निर्माण होगा उसका भी नाश होगा। जिसका जन्म होगा उसकी मृत्यु भी होगी।
लेकिन आत्मा जिसका निर्माण नहीं हुआ है तो उसका नाश भी नहीं होगा। यदि यह जान लिया है तो हे महाबाहु अर्जुन! शोक नहीं केवल अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

2.27

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः(र्), ध्रुवं(ञ्) जन्म मृतस्य च।तस्मादपरिहार्येऽर्थे, न त्वं(म्) शोचितुमर्हसि॥2.27॥

कारण कि पैदा हुए की जरूर मृत्यु होगी और मरे हुए का जरूर जन्म होगा। अतः (इस जन्म-मरण रूप परिवर्तन के प्रवाह का) निवारण नहीं हो सकता। (अतः) इस विषय में तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये।

विवेचन - जिसका जन्म हुआ है,उसकी मृत्यु निश्चित है। जिसकी मृत्यु हो गई उसका जन्म भी होगा यह भी निश्चित है। इस जन्म-मरण के चक्र से कोई नहीं बचेगा। जो मुक्त हो जाता है अर्थात् जिनको मोक्ष हो जाता है वे जानते हैं कि वे अजन्मा, अमर हैं उन्होंने बस यह शरीर धारण किया है।
मानव शरीर में रहते हुए भी कोई भी व्यक्ति मोक्ष का आनंद प्राप्त कर सकता है। जब मनुष्य यह जान लेगा कि शरीर नष्ट हो जाने पर भी वह नष्ट नहीं होगा। जब वह स्वीकार कर लेगा कि यह (मृत्यु)उसके लिए अपरिहार्य है, जिसको कोई टाल नहीं सकता और यह शोक करने योग्य नहीं है। जब तक मृत्यु नहीं आती तब तक कर्तव्य कर्म करना चाहिए।

2.28

अव्यक्तादीनि भूतानि, व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव, तत्र का परिदेवना॥2.28॥

हे भारत ! सभी प्राणी जन्म से पहले अप्रकट थे (और) मरने के बाद अप्रकट हो जायँगे, केवल बीच में ही प्रकट दीखते हैं। (अतः) इसमें शोक करने की बात ही क्या है?

विवेचन - जिसका निर्माण होता है वह भूतमात्र है **भवति इति भूतः**। जिसका निर्माण होता है क्या वह पहले नहीं था।

जैसे ग्रीष्म ऋतु में चारों ओर पेड़ पौधे सूखे दिखाई पड़ते हैं। जब वर्षाकाल आयेगा तब सर्वत्र हरियाली छा जाएगी, घास नजर आएगी। अव्यक्त रूप से जमीन में घास का बीज पड़ा था जो वर्षा का स्पर्श पाकर व्यक्त हो गया। यह अव्यक्त घास व्यक्त हो गई। सारे भूत पहले अव्यक्त होते हैं फिर व्यक्त हो जाते हैं। देह का निधन होने पर व्यक्त अव्यक्त हो जाता है।

बर्फ के टुकड़े को किसी बर्तन में रखें तो कुछ समय बाद वह बदल कर पानी हो जाती है। जैसे ही बर्तन को धूप में रखें तो हो सकता है कि पानी सूख जाए। सूख जाने पर पानी नष्ट नहीं होता वाष्प के रूप में वातावरण में चला जाता है। ठंडक मिलने पर पुनः वर्षा के रूप में आ जाता है। पहाड़ों पर बर्फ के रूप में आ जाता है। इस प्रकार पानी नष्ट नहीं होता। जैसे पानी वाष्प के रूप में अव्यक्त हो गया वैसे ही शरीर नष्ट हो जाने पर अव्यक्त हो जाता है और जन्म-मरण का चक्र चलता रहता है। इसलिये अव्यक्त के लिये शोक करना उचित नहीं है।

ज्ञानेश्वर महाराज जी समझाते हुए कहते है कि जैसे वायु नहीं होने पर तालाब में पानी स्थिर रहता है। वायु के बहने पर वायु के स्पर्श से जल में तरंगों का निर्माण हो जाता है। यदि वायु फिर बहना बंद हो जाए तो तरंगें दिखनी बंद हो जाएंगी। ऐसे ही हमारा शरीर है जो व्यक्त से अव्यक्त और अव्यक्त से व्यक्त हो जाता है।

शुद्ध सोने से अलंकार बनाने के बाद हम उसे सोना नहीं, आभूषण कहते हैं। आभूषणों को पुनः स्वर्ण में बदल दिया जाए तो अलंकार का अस्तित्व नहीं रहता। जैसे सोने से आभूषण से सोना और आभूषण से सोना बन जाता है, ऐसे ही आत्मा और देही का चक्र चलता रहता है। फिर क्यों शोक करता है।

तर्क करते समय जैसे वकील जज के सामने अलग अलग तरीके से अपनी बात रखने का प्रयास करते हैं ,उसी प्रकार भगवान अर्जुन को भिन्न भिन्न विधाओं से समझा रहे हैं कि कर्तव्य कर्म करो, शोक न करो।

2.29

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनम्,आश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः(श्) शृणोति,
श्रुत्वाप्येनं(म्) वेद न चैव कश्चित्॥2.29॥

कोई इस शरीरी को आश्चर्य की तरह देखता (अनुभव करता) है और वैसे ही दूसरा (कोई) (इसका) आश्चर्य की तरह वर्णन करता है तथा अन्य (कोई) इसको आश्चर्य की तरह सुनता है और इसको सुनकर भी कोई नहीं जानता।अर्थात यह दुर्विज्ञेय है।

विवेचन - भगवान कहते हैं कि हम इसे आश्चर्य से सुनते हैं कि यह अभी है, अभी नहीं भी है। आश्चर्य से इसके बारे में कहते हैं, आश्चर्य से कुछ सुन लेते हैं, कुछ आश्चर्य से देखते हैं। यह रहता है, नष्ट नहीं होता। यह बात सुनकर आसानी से समझ नहीं पाते। आत्मज्ञान को आसानी से नहीं समझा जा सकता। यह आत्मज्ञान सुनकर समझा नहीं जाता, पढ़कर प्राप्त नहीं हो सकता, इसका अनुभव करना पड़ता है। यह अनुभूति का शास्त्र है। विज्ञान की सारी बातें थ्योरी से नहीं आती। जब तक हम प्रैक्टिकल नहीं करते हमें समझ नहीं आता। गीता जी योग शास्त्र है, योग का विज्ञान है। स्वामी जी कहते हैं कि गीता जी का अभ्यास तीन स्तर पर करना है - गीता पढ़ें,

पढ़ायें, जीवन में लायें।

पढ़ने से बात कुछ समझ आएगी, पढ़ाने से पढ़ी हुई बात का अभ्यास अच्छा होता है और आचरण में लाने के बाद उसकी अनुभूति होती है। गीता जी का प्रैक्टिकल करना ही पड़ेगा जैसे रसायन शास्त्र,, भौतिक शास्त्र, जीव विज्ञान है। सारे विज्ञान पढ़ने के लिए प्रैक्टिकल जरूर करना पड़ता है, इसी प्रकार गीता जी को समझने के लिए उसका प्रैक्टिकल करना पड़ता है अर्थात आचरण में लाकर अनुभव करना पड़ता है।

भगवान अर्जुन से कहते हैं - ज्ञान को मानना, धारण करना और फिर अनुभूति प्राप्त करना पड़ता है। जब हम इस ज्ञान को आचरण में लाएँगे, धीरे-धीरे फिर बात समझ आने लगती है और हमें उसकी अनुभूति होती है। यह बात समझने के लिए हम आत्मज्ञानी संतो के पास जाने लगते हैं।

भगवान अर्जुन से कहते हैं कि यदि बात समझ नहीं आ रही है तो चिंता मत करो आचरण में लाने का अभ्यास करो।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥१२-६॥

भगवान अर्जुन से कहते हैं कि आचरण में लाने के लिए उसे क्या करना है - मन बुद्धि को भगवान को अर्पण कर दो, अभ्यास करो भगवान के लिए कार्य करो, जो भी कार्य करो उसे भगवान को अर्पण कर दो, कर्तव्य का पालन करो और फल की इच्छा को छोड़ दो।

12वें अध्याय के अंतिम श्लोक में भगवान ने कहा-

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।।12.20।।

2.30

देही नित्यमवध्योऽयं(न्), देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि, न त्वं(म्) शोचितुमर्हसि॥2.30॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! सबके देह में यह देही नित्य ही अवध्य है। इसलिये सम्पूर्ण प्राणियों के लिये अर्थात् किसी भी प्राणी के लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये।

विवेचन - भगवान अर्जुन से कहते हैं कि सबके देह में यही आत्मा/देहिन है। यह मेरा देह है ऐसा कहने वाले का भी मालिकआत्मा है।आत्मा नित्य है, अवध्य है - इसका वध नहीं किया जा सकता, यह कभी खत्म नहीं होती , इसलिए सारे भूतमात्रों के लिए शोक करने की आवश्यकता नहीं है। दुख से आँसू आ सकते हैं, परंतु शोक में डूबना उचित नहीं है।
भगवान ने अर्जुन को कर्तव्य कर्म का बोध कराया। जो कर्म करना आवश्यक है, कर्तव्य है, धर्म है। सभी का स्वधर्म होता है। उसे मनुष्य का शरीर प्राप्त हुआ है, उसका भी स्वधर्म है। स्वधर्म को ध्यान में रखते हुए अपने कर्तव्यकर्म को करना चाहिए। माँ का स्वास्थ्य ठीक नहीं है उसकी देखभाल करना पुत्र का कर्तव्य है। पुत्र सैनिक है, मातृभूमि की रक्षा करना उसका कर्तव्य है।योद्धा के लिए युद्ध करना उसका कर्तव्य है। रणभेरी बजने के बाद युद्ध करना योद्धा का कर्तव्य है।
अर्जुन के मन में दो कर्तव्यों के बीच द्वन्द्व चल रहा है। जब जीवन में ऐसा समय आता है तो श्रीमद्भगवद्गीता जी मार्ग दिखाती है। एक सैनिक छुट्टी पर घर आता है। माँ की तबीयत बिगड़ गई अस्पताल में वह माँ की सेवा कर रहा है। माँ आईसीयू में है, कभी भी देहावसान हो सकता है। अचानक उसे सूचना मिलती है उसे तुरंत ड्यूटी जॉइन करनी है। माँ मृत्युशैया पर है, भारत माँ पुकार रही है। यह स्वाभाविक है कि द्वन्द्व होगा लेकिन दुष्टों का नाश करने के लिए युद्ध करना सैनिक का प्रथम कर्तव्य है। माँ को तो भाई बहन संभाल लेंगे लेकिन भारत माता को मुझे देखना ही मेरा कर्तव्य है जो अधिक महत्वपूर्ण है।
लेकिन अर्जुन किंकर्तव्यविमूढ़ है क्योंकि इस युद्ध में अधर्म के साथ उसके गुरुजन, भाई-बांधव खड़े थे। जब द्वन्द्व हो तो जो बात ज्यादा लोगों के लिए हितकारी हो उसे ही स्वीकार करना चाहिए।

जीवन विषयक किसी भी कठिन प्रश्न का उत्तर गीता जी में मिल जाता है। कठिन से कठिन परिस्थिति में गीता जी प्रासंगिक है।

2.31

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य, न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्, क्षत्रियस्य न विद्यते॥2.31॥

और अपने क्षात्रधर्म को देखकर भी (तुम्हें) विकम्पित अर्थात् कर्तव्य-कर्म से विचलित नहीं होना चाहिये क्योंकि धर्ममय युद्ध से बढ़कर क्षत्रिय के लिये दूसरा कोई कल्याणकारक कर्म नहीं है।

विवेचन - श्रीभगवान कहते है कि इस संसार में 4 वर्ण के लोग हैं –
चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।।4.13।।
इस धरती पर चार प्रकार मनुष्य के स्वभाव है जातियाँ नहीं। वे पढ़ाई, खेलकूद, मैनेजमेंट, व्यापार, सेवा आदि में दक्ष हो सकते हैं।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।18.43।।

क्षत्रिय का स्वभाव है योद्धा होना। शौर्य, वीरता, तेज, दक्षता, सजगता, धैर्य, युद्ध में पीठ न दिखाना योद्धा के गुण होते हैं। कर्तव्य का अवसर मिलना योद्धा के लिए बड़ा सौभाग्य है। धर्मयुद्ध उसे आनंद देता है। धर्मयुद्ध स्वर्ग का खुला द्वार है।

जब सैनिक समरांगण में जाने के लिए तैयार होते हैं तो वीर पत्नियाँ तिलक लगाते हुए कहती हैं जीत कर आना या मृत्यु का वरण करना, पीठ मत दिखाना।

2.32

यदृच्छया चोपपन्नं(म्), स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः(फ्) पार्थ, लभन्ते युद्धमीदृशम्॥2.32॥

अपने-आप प्राप्त हुआ (युद्ध) खुला हुआ स्वर्ग का दरवाजा भी है। हे पृथानन्दन ! (वे) क्षत्रिय बड़े सुखी (भाग्यशाली) हैं (जिनको) ऐसा युद्ध प्राप्त होता है।

विवेचन - भगवान अर्जुन से कहते हैं कि उसे कर्तव्य कर्म करने का अवसर प्राप्त हुआ है। धर्म युद्ध करने का अवसर प्राप्त होना भाग्य जागृत होने के समान है। यह धर्मयुद्ध उसके लिए स्वर्ग का खुला द्वार है । क्षत्रिय के लिए कर्तव्य कर्म धर्मयुद्ध करना है। कर्तव्य कर्म करने का अवसर मिलता है ,उसे करना नहीं पड़ता।

प्रॉक्सी वार धर्म युद्ध नहीं है। धर्म युद्ध में वीर सैनिक आमने- सामने आकर युद्ध करते हैं।

2.33

अथ चेत्त्वमिमं(न्) धर्म्यं(म्), सङ्ग्रामं(न्) न करिष्यसि।
ततः(स्) स्वधर्मं(ङ्) कीर्तिं(ञ्) च, हित्वा पापमवाप्स्यसि॥2.33॥

अब अगर तू यह धर्ममय युद्ध नहीं करेगा, तो अपने धर्म और कीर्ति का त्याग करके पाप को प्राप्त होगा।

विवेचन - भगवान अर्जुन से कहते हैं कि ऐसा होते हुए भी यदि वह कर्तव्य रूप में प्राप्त हुआ स्वधर्म का पालन नहीं करेगा तो वह अपने कर्तव्य कर्म का अवसर खो देगा। स्वधर्म का करने का अवसर गँवाना या अपना कर्तव्य नहीं निभाना पाप है।

श्रीमद्भगवद्गीता जी का बोध है - **DUTY FIRST**

2.34

अकीर्तिं(ञ्) चापि भूतानि, कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्ति:(र्), मरणादतिरिच्यते॥2.34॥

और सब प्राणी भी तेरी सदा रहने वाली अपकीर्ति का कथन अर्थात निंदा करेंगे। (वह) अपकीर्ति सम्मानित मनुष्य के लिये मृत्यु से भी बढ़कर दुःखदायी होती है।

विवेचन - भगवान अर्जुन से कहते हैं कि यदि वह समरांगण छोड़ कर आ गए तो सब लोग उनका अपय़श करेंगे । उनकी अपकीर्ति कभी ना नष्ट होने वाली हो जाएगी, अनंत काल तक रहेगी।सम्मानित व्यक्ति के लिए अपयश और अपकीर्ति होना उसके लिए मृत्यु से अधिक दुःखद है। सम्मानित व्यक्ति के लिए अपकीर्ति सहना बहुत कठिन है।

2.35

भयाद्रणादुपरतं(म्), मंस्यन्ते त्वां(म्) महारथाः।
येषां(ञ्) च त्वं(म्) बहुमतो, भूत्वा यास्यसि लाघवम्॥2.35॥

तथा महारथी लोग तुझे भय के कारण युद्ध से हटा हुआ मानेंगे। जिनकी (धारणा में) तू बहुमान्य हो चुका है, (उनकी दृष्टि में) (तू) लघुता को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन - श्रीभगवान अर्जुन को समझाते हैं कि मन में आई करुणा के कारण भी यदि उसने युद्ध नहीं लड़ा तो भी लोग कहेंगे कि अर्जुन डर के मारे भयभीत होकर समरांगण छोड़कर भाग गये। अर्जुन श्रेष्ठतम योद्धा है फिर भी लोग उसे क्षुद्र योद्धा मानेंगे।भगवान व्यवहारिक बातें बता रहे हैं कि यदि कोई ऐसा कहेगा कि अर्जुन डर के मारे भाग गये तो वह यह सहन नहीं कर पाएगा।

2.36

अवाच्यवादांश्च बहून्, वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं(न्), ततो दुःखतरं(न्) नु किम्॥2.36॥

तेरे शत्रु लोग तेरी सामर्थ्य की निन्दा करते हुए बहुत से न कहने योग्य वचन भी कहेंगे। उससे बढ़कर और दुःख की बात क्या होगी?

विवेचन - जो बातें वाणी से नहीं कहनी चाहिए ऐसी बहुत सी बातें लोग अर्जुन के बारे में कहेंगे। जो उसका हित नहीं चाहते अर्थात उसके शत्रु हैं, उसके सामर्थ्य की निंदा करेंगे। जो हितैषी है वही मित्र हैं।जो सामर्थ्यवान होते हैं, उन्हें स्वनिंदा सुनना सहन नहीं होता। निंदनीय बातें सुनने से ज्यादा अन्य कोई दुःख नहीं हो सकता है।

2.37

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं(ञ्), जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय, युद्धाय कृतनिश्चयः॥2.37॥

अगर (युद्ध में तू) मारा जायगा (तो) (तुझे) स्वर्ग की प्राप्ति होगी (और) अगर (युद्ध में तू) जीत जायगा (तो) पृथ्वी का राज्य भोगेगा। अतः हे कुन्तीनन्दन! (तू) युद्ध के लिये निश्चय करके खड़ा हो जा।

विवेचन - भगवान अर्जुन को समझाते हैं कि जब एक सैनिक देश रक्षा के लिए हुतात्मा हो जाता है तो उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है।भगवान अर्जुन से कहते हैं कि कर्तव्य पालन करते हुए यदि वह युद्ध में मारा जाता है तो उसे स्वर्ग की प्राप्ति होगी। अपना कर्तव्य निभाते हुए जो मृत्यु होती है वही श्रेष्ठ होती है। अपना कर्तव्य निभाते हुए यदि उसकी मृत्यु होती है तो उसे स्वर्ग की प्राप्ति होगी और यदि वह जीतता है तो पृथ्वी का राज्य उसे प्राप्त हो जाएगा, हस्तिनापुर का निष्कलंक राज्य वह प्राप्त कर लेगा। भगवान अर्जुन को आज्ञा देते हैं कि वह खड़े होकर युद्ध करने के अपने कर्तव्य का पालन करे। कर्तव्य निभाने का निश्चय करके युद्ध के लिए तैयार हो।अर्जुन ने भगवान से वे सारे प्रश्न पूछे जो उनके मन में थे। जब तक अर्जुन की सारी शंकाओं का निवारण नहीं हुआ अर्जुन युद्ध के लिए तैयार नहीं हुए।

इस प्रकार प्रार्थना के साथ इस गूढ़ विवेचन का समापन हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||